शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.IV, pp (1057-1062) Oct.- Dec. 2019

हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श तथा इसकी महत्ता

डॉ. मुख्तार अहमद गुलगुंदी
सहायक अध्यापक,
हिन्दी विभाग, कर्नाटक कला महाविद्यालय, धारवाड।
Email:mukhtarhindi786@gmail.com

सारांश

हिन्दी कथा साहित्य में जहाँ स्त्री की त्रासदी को अभिव्यक्त किया जाता है और उसके जरिए नारी अस्मिता की रक्षा तथा उसकी स्वतंत्रता पर चिंतनशीलता को उजागर किया जाता है उसे स्त्री विमर्श कहा जाता है। जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्याएँ हमें देखने को मिलती हैं। महिला लेखिकाओं की लड़ाई के संदर्भ में कहा जा सकता है कि नारी आदिकाल से ही पीड़ित एवं शोषित रही है। पुरुष प्रधान समाज मान–मर्यादा के आड़ में सदा उसे दबाकर रखना चाहा। कभी घर की इज्जत कहकर तो कभी देवी कहकर चार दीवारों के अंदर कैद ही रखा। इन्हीं परंपरागत पितृसत्तात्मक बेड़ियों को लांघने की लड़ाई है स्त्री विमर्श।

मुख्य शब्द : *नारी विमर्श।*

प्रस्तावना

हिन्दी कथा साहित्य में जहाँ स्त्री की त्रासदी को अभिव्यक्त किया जाता है और उसके जरिए नारी अस्मिता की रक्षा तथा उसकी स्वतंत्रता पर चिंतनषीलता को उजागर किया जाता है उसे स्त्री विमर्श कहा जाता है। जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्याएँ हमें देखने को मिलती हैं। हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्ष का जन्म छायावाद काल से ही माना जाता है। नारी सशक्तिकरण का सुंदर उदाहरण है– महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ'।

प्रारंभ से लेकर आजतक के स्त्री विमर्शात्मक लेखकों ने स्त्री समस्या को अपना विषय बनाया लेकिन उस रूप में नहीं लिखा जिस रूप में स्वयं महिला लेखिकाओं ने लिखा है। क्योंकि पुरुष स्त्री के अनुभवों को भोगा नहीं होता है। अतः स्त्री–विमर्श की शूरूआती गूंज पश्चिम में देखने को मिली। सन् 1960 ई. के आस–पास नारी सशक्तिकरण ने जोर पकडाी जिसमें चार नाम चर्चित हैं। उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी एवं शिवानी आदि लेखिकाओं ने नारी मन की अंतर्द्वन्द्वों एवं आप बीती घटनाओं को उकेरना शुरू किया और आज स्त्री–विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है।

आठवें दशक तक आते–आते इस विषय ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया जो शुरूआती स्त्री–विमर्श से ज्यादा शक्तिशाली सिद्ध हुआ। आज मैत्रेयी पुष्पा तक आते–आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गयी जो पितृसत्तात्मक समाज को झकझोर दिया। नारी मुक्ति

 Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com/* https://doi.org/10.31995/shodhmanthan

की गूंज अब देह मुक्ति के रूप में परिलक्षित होने लगी।

सामाजिक सरोकारों से लैस बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं यह लगातार चर्चा और चिंता का विषय रहा है कि हिंदी में स्त्री प्रश्न पर मौलिक लेखन आज भी काफी कम मात्रा में मौजूद है। स्त्री विमर्श की सैद्धांतिक अवधारणाओं एवं साहित्य में प्रचलित स्त्री विमर्श की प्रस्थापनाओं की भिन्नता या एकांगीपन के संदर्भ में पहला प्रश्न यह उठता है कि हिंदी साहित्य जगत में स्त्री विमर्श के मायने क्या हैं? साहित्य, जिसे कथा, कहानी, आलोचना, कविता इत्यादि मानवीय संवेदनाओं की वाहक विधा के रूप में देखा जाता है वह दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक तथा अन्य हाशिए के विमर्शों को किस रूप में चित्रित करता है? साहित्य अपने याथार्थवादी होने के दावे के बावजूद क्या स्त्री विमर्श की मूल अवधारणाओं को रेखांकित कर उस पर आम जन के बीच किसी किस्म की संवेदना को विकसित कर पाने में सफल हो पाया है?

स्त्री के प्रश्न हाशिए के नहीं बल्कि जीवन के केंद्रीय प्रश्न हैं। किंतु हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा जिसे वर्चस्वशाली पुरुष लेखन भी कहा जा सकता है, में स्त्री प्रश्नों अथवा स्त्री मुद्दों की लगातार उपेक्षा की जाती रही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्री अथवा स्त्री प्रश्न सिरे से गायब हैं बल्कि यह है कि स्त्री की उपस्थिति या तो यौन वस्तु (सेक्सुअल ऑब्जेक्ट) के रूप में है या यदि वह संघर्ष भी कर रही है तो उसका संघर्ष बहुत हद तक पितृसत्तात्मक मनोसंरचना अख्तियार किये होता है। संघर्ष करने वाली स्त्री की निर्मिति ही पितृसत्तात्मक होती है। साहित्य की पितृसत्तात्मक परंपरा में लगातार स्त्री प्रश्नों का ह्लास होता क्यों दिख रहा है? क्या स्त्री विमर्श को देह केंद्रित विमर्श के समकक्ष रखकर स्त्री विमर्श चलाने के दायित्वों का निर्वाह किया जा सकता है? यदि साहित्य का कोई सामाजिक दाइत्व है तो हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के नाम पर स्त्री देह को बेचने व स्त्री को सेक्सुअल ऑब्जेक्ट अथवा मार्केट के उत्पाद के रूप में परिवर्तित कर दिये जाने की जो पूँजीवादी पितृसत्तात्मक बाजारवादी रणनीति काम कर रही है। उस मानसिकता से यह मुक्त क्यों नहीं है? उसको पहचान कर उसके सक्रिय प्रतिरोध से ही वास्तविक स्त्री विमर्श संभव है। क्यों सत्तर के दशक में नवसामाजिक आंदोलन के रूप में समतामूलक समाज निर्माण के स्वप्न को लेकर उभरे स्त्रीवादी आंदोलनों की चेतना एवं उनके मुद्दों को जाने–अनजाने नजरअंदाज करने का प्रयास किया जा रहा है? साहित्य में महिला लेखन के रूप में उपलब्ध विभिन्न कहानियाँ, कविताओं तथा आत्मकथाओं में स्त्री की दैहिक पीड़ा से परे जाकर उसकी वर्गीय, जातीय एवं लैंगिक पीड़ा का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिंबित क्यों नहीं हो पा रहा है? स्त्री साहित्य के सवालों के मूल्यांकन के संदर्भ में भी हिन्दी आलोचना में गैर–अकादमिक एवं उपेक्षापूर्ण रवैया क्यों मौजूद है। साठ के दशक में पुरुष वर्चस्ववाद की सामाजिक सत्ता और संस्कृति के विरुद्ध उठ खड़े हुए स्त्रियों के प्रबल आंदोलन को नारीवादी आंदोलन का नाम दिया गया। वस्तुतः नारीवादी आंदोलन एक राजनीतिक आंदोलन है जो स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं दैहिक स्वतंत्रता का पक्षधर है। स्त्री मुक्ति अकेले स्त्री की मुक्ति का प्रश्न नहीं है बल्कि यह संपूर्ण मानवता की मुक्ति की अनिवार्य शर्त है। दरअसल यह अस्मिता की लड़ाई है। इतिहास ने यह साबित भी किया है कि आधी आबादी की शिरकत के बगैर क्रांतियाँ सफल नहीं

हो सकतीं।

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में अपनी जातीय अस्मिता की पहचान और जनता के अधिकारों के माँग के साथ–साथ स्त्री मुक्ति का स्वप्न भी देखा जा रहा था। नव स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र ने महिला आंदोलनों को यह विश्वास भी दिलाया था कि बड़े उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात स्त्री–पुरुष संबंध, लैंगिक श्रम विभाजन, आर्थिक हिंसा जैसे मुद्दे स्वतः ही हल हो जाएँगे परंतु स्वतंत्रता के इतने वर्षों के बाद भी स्त्री–मूलक प्रश्न ज्यों के त्यों बने हुए हैं। औरत पर आर्थिक, सामाजिक यौन उत्पीड़न अपेक्षतया अधिक गहरे, व्यापक, निरंकुश और संगठित रूप से कायम है। स्त्री आंदोलनों को इन समस्त चुनौतियों से लड़कर ही अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना होगा। निश्चित रूप से इसका स्वरूप अन्य मुक्तिकामी आंदोलनों से किसी रूप में भिन्न नहीं है जो वर्गीय, जातीय, नस्लीय आधार पर समाज हो रही हिंसा एवं असमानता के प्रति संघर्षरत है तथा एक समतामूलक समाज निर्माण हेतु प्रतिबद्ध हैं। स्त्रीवादी आंदोलनों की शैक्षणिक रणनीति के रूप में स्त्री अध्ययन एक अकादमिक अभिप्राय है जो मानवता एवं जेंडर संवेदनशील समाज में विश्वास करता है। यह समाज के प्रत्येक तबके के अनुभवों को केंद्र में रखकर ज्ञान के प्रति नया दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्रतिबद्ध है जो सत्तामूलक ज्ञान की रूढ़ सीमाओं को तोड़कर ज्ञान को उसके बृहद्रूप में प्रस्तुत करता है। विशेष तौर पर स्त्री विषयक मुद्दों के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर अपनी राय रखते हुए जेंडर समानता आधारित समाज के निर्माण की ओर अग्रसर है। अंतरविषयक अध्ययन होने के कारण यह अन्य विषयों के साथ ज्ञानात्मक संबंध भी कायम करता है। स्त्री प्रश्नों के प्रति अकादमिक जगत में स्पेस बनाने के लिए भी स्त्रीवाद को पढ़ाया जाना अति आवश्यक है। जरुरी नहीं कि उच्च शिक्षा संस्थानों में स्त्रीवाद पढ़ने के बाद लोग स्त्रीवादि बने ही परंतु यह संभव हो सकेगा कि ज्ञान के नए क्षितिज के रूप में वह उसके बारे में समझ रखते हों।

सामान्यतया स्त्री विमर्श के अकादमिक होने के उपरांत यह आरोप लगते रहे हैं कि इसके कारण आंदोलनों का संस्थानीकरण हुआ है और लोग स्त्री मुद्दों को टेक्स्ट के रूप में पढ़ने लगे हैं। बहुत हद तक यह सही भी है परंतु धीरे धीरे ही सही स्त्री अध्ययन परंपरागत ज्ञान की दुनिया में अपने लिए स्थान बना पाने में सफल हो रहा है। इसे शैक्षिक संस्थाओं के उदारवादी चेहरे के रूप में भी देखा जा सकता है। या यूँ कहें कि यह पितृसत्तात्मक ज्ञान व्यवस्था की मजबूरी भी है कि वह इस किस्म के विमर्शों को महत्व दे।

समाज के दो पहलू स्त्री–पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहींहै। उसके बाद भी पुरुष समाज ने महिला समाज को अपने बराबर के समानता से वंचित रखा। यही पक्षपात दृष्टि ने शिक्षित नारियों को आंदोलन करने को मजबूर किया जो आज ज्वलंत मुद्दा नारी विमर्श के रूप में दृष्टिगोचर है।

आदिकाल से ही नारियों की दशा दयनीय एवं शोचनीय थी। स्त्रियों की दशा को देखकर विवेकानंद कहते हैं– ''स्त्रियों की अवस्था को सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई संभावना नहीं है। पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना संभव नहीं है।'' विवेकानंद जी ने महिला समाज की

 Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com/* https://doi.org/10.31995/shodhmanthan

वास्तविक दशा से चिंतित देश एवं समाज के भलाई महिला समाज के तरक्की के बगैर असंभव बताया है।

सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह 'स्वति बूंद और खारे मोती' तथा 'यह तुम भी जानों' काफी चर्चित रहे हैं। इनकी विद्रोहणी कविता में आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है–

"माँ–बाप ने पैदा किया था गूंगा
परिवेश ने लंगडा बना दिया चलती रही परिपाटी पर
बैसाखियाँ चरमराती हैं।
अधिक बोझ से अकुलाकरविस्कारित मन हुंकारता है बैसाखियों को तोड़ दूँ।''

उपर्युक्त कविता स्त्री–जीवन की वास्तविकता को प्रदर्शित कर रही है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्यकार एवं कवि रघुवीर सहायजी नारी जीवन की वास्तविक चित्र खिंचा है, उन्होंने अपने कव्य में स्वतंत्रता के बाद स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं को विषय बनाया है। जिस भारत में स्त्री वैदिक काल में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते तत्र रमंते देवा'' कहा जाता था आज वही अनेक भाषण का शिकार हो रही है। वह कहता है–

"नारी बेचारी है पुरुष की मारीतन से क्षुदित है लपक कर झपक कर अंत में चित्त है।''

प्रस्तुत पंक्ति में कविवर सहाय जी नारी को बेचारी कहकर उसकी दयनीय दशा का वर्णन किया है जो अपने अधिकारोंके लिए लड़ नहीं पाती। लेकिन वर्तमान मेम यह स्थिति परिवर्तित नजर आती है। भारत सरकार ने सन् 2001 को महिलाओं के सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषित किया। अब नारी अपनी हरेक अधिकार को लेकर रहेगी। यही लड़ाई स्त्री–विमर्श या नारी सशक्तिकरण के रूप में परिलक्षित होती है।

हिन्दी कथा साहित्य में नारी विमर्श का जोर आठवें दशक तक आते–आते एक आंदोलन का रूप ले लिया। आठवें दशक के महिला लेखिकाओं में उल्लेखनीय हैं– ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुद्गल, मृणाल पाण्डेय, नासिरा शर्मा, दीप्ति खण्डेलवाल, कुसुम अंचल, इंदू जैन, सुनीता जैन, प्रभाखेतान, सुधा अरोड़ा, क्षमा शर्मा, अर्चना वर्मा, नमित सिंह, अल्का सरावगी, जया जादवानी, मुक्ता रमणिका गुप्ता आदि ये सभी लेखकिआओं ने नारी मन की गहराईयों, अंतर्द्वन्द्वों तथा अनेक समस्याओं का अंकन संजीदगी से किया है।

स्त्री की दशाओं पर अनेक समाज सुधारकों ने चिंता व्यक्त किया और यथा संभव दूर करने का प्रयास भी। जिससे नारी की स्थिति में परिवर्तन हुआ। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन तथा अनेक सरकारी संगठनों ने नारी शिक्षा पर जोर दिया, जिसका सकारात्मक परिणाम आया। वंदना वीथिका के शब्दों में– ''नारियों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप उनकी अशिक्षा थी और उनकी परतंत्रता का प्रमुख कारण उनकी आर्थिक स्वतंत्रता का अभाव था। आज स्थिति परिवर्तित हुई है। आज हर क्षेत्र का द्वार लड़कियों के लिए खुला है। वे हर जगह प्रवेश पाने लगी हैं– जमीं से आसमां तक– पृथ्वी से चांद तक (कल्पना चावला, सुनिता विलियम्स) उनकी पहुंच है।''

आज स्त्री समाज सभी क्षेत्रों में अपनी भागीदारी निभा रही है। राजनीतिक हो या सामाजिक, आर्थिक, हो या सांस्कृतिक उसके बाद भी यह लड़ाई क्यों? लेकिन सवाल तो यह है कि भांति स्वतंत्रता चाहती है। इसीलिए पितृसत्ता का विरोध कर पारंपरिक बेडियों को तोड़ना चाहती है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में स्त्रीवादी विचार को पनपने का सुअवसर मिला। भूंडलीकरण ने अपने तमाम अच्छाईयों एवं बुराईयों के साथ सभी वर्ग के शिक्षित स्त्रियों को घर से बाहर निकलने का अवसर दिया। परिणामस्वरूप स्त्री अपने वर्जित क्षेत्रों में ठोस दावेदारी की और स्वावलंबन के दिशा में तीव्र प्रयास भी सामने आये।

स्त्री–विमर्श वस्तुतः स्वाधीनता के बाद की संकल्पना है। स्त्री के प्रति होने वाले शोषन के खिलाफ संघर्ष है। डॉ. संदीप रणभीरकर के शब्दों में– ''स्त्री विमर्श स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री चेतन ने ही स्त्री–विमर्श को जन्म दिया है।''

पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री समाज को हमेशा अंधकारमय जीवन जीने को मजबूर किया है। लेकिन आज की नारी चेतनशील है जिसे अच्छे–बुरे का ज्ञान है। इसीलिए अब इस व्यवस्था का बहिष्कार कर स्वच्छंदात्मक जीवन जीने को आतुर दिखाई पड़ती है। नारी अस्तित्व को लेकर अपने–अपने समय पर कई विद्वानों ने चिंता व्यक्त किया है। तुलसीदास जी ने ''ढ़ोल, गवार, शूद्र, पशु, नारी– सकल ताड़ना के अधिकारी'' कहकर नारी को प्रताड़ना के पात्र समझा है तो मैथिलीशरण गुप्त जी ने ''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में दूध और आंखों में पानी'' कहकर नारी के स्थीति पर चिंता व्यक्त किया है। प्रसाद ने ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो'' कहा है तो शेक्सपीयर ने ''दुर्बलता तुम्हारा नाम ही नारी है। आदि कहकर नारी अस्तित्व को संकीर्ण बताया है।

अब स्थिति कुछ बदली हुई नजर आती है। क्योंकि छठे शताब्दी के पहले तक सिर्फ पुरुष लेखकों का अधिकार था, महिला लेखन को काऊच लेखक कहकर हंसी उड़ाया जाता था। परंतु अब स्त्री–विमर्श का डंका इसलिए बज रहा है क्योंकि आठवें दशक तक आते–आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गयी।

नारी मुक्ति से जुड़े अनेक प्रश्न, उन प्रश्नों से जुड़ी सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक बेबसी और उससे उत्पन्न स्त्री की मनः स्थिति का चित्रण अनेक स्तरों पर हुआ है।" साठ के दशक और उसके संघर्ष का अधिकांश इतिहास जागरूक होती हुई स्त्री का अपना रचा हुआ इतिहास है। नगरों एवं महानगरों में शिक्षित एवं नवचेतना युक्त स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया था जो समाज के विविध क्षेत्र में अपनी कार्य क्षमता प्रमाणित करने के लिए उत्सुक था।''

हिन्दी कथा लेखिकाओं ने अपने–अपने लेखन में नारी मन की अनेक समस्याओं को विषय बनाया है। अमृता प्रीतम– 'रसीदी टिकट', कृष्णा सोबती– 'मित्रो मरजानी, मन्नू भंडारी– 'आपका बंटी', चित्रा मुद्गल– 'आवां' एवं 'एक जमीन अपनी', ममता कालिया– 'बेघर', मृदुला गर्ग– 'कठ गुलाब', मैत्रेयी पुष्पा– 'चाक' एवं 'अल्मा कबूतरी', प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता, पद्मा

सचदेव– 'अब न बनेगी देहरी', राजीसेठ का 'तत्सम', मेहरुन्निसा परवेज़ का 'अकेला पलाश', शशि प्रभा शास्त्री की 'सीढ़ियाँ', कुसुम अंचल के 'अपनी–अपनी यात्रा', शैलेश मटियानी की 'बावन नदियों का संगम', उषा प्रियम्वदा के 'पचपन खम्बे लाल दीवार', दीप्ति खंडेलवाल के 'प्रतिध्वनियाँ' आदि में नारी संघर्ष को देखा जा सकता है। इस समाज में जब स्त्रियाँ अपनी समझ और काबिलियत जाहिर करती हैं तब वह कुलच्छनी मानी जाती हैं, जब वह खुद विवेक से काम करती है तब मर्यादाहीन समझी जाती है। अपनी इच्छाओं, अरमानों के लिए जब वह आत्मविश्वास के साथ लड़ती हैं और गैर समझौतावादी बन जाती हैं, तब परिवार और समाज के लिए वह चुनौती बन जाती है।''

जरूरी है हिन्दी स्त्री विमर्श के नए आयाम की तलाश। हिन्दी में स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों तक ही सीमित नहीं है। उसके और भी कुछ आयाम हैं और इन आयामों को भी तलाशने की जरूरत हमारे आलोचकों को है न कि सिर्फ चंद नामों के आधार पर एक खास दायरे में बाँधने की। कला साहित्य के हर विचारात्मक संघर्ष के पीछे अपने समय और समाज के परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना जरूरी है। यहाँ तक कि स्त्री की स्थिति को निर्धारित करने वाले संस्थाओं में आये परिवर्तनों को भी लक्ष्य करना जरूरी है।

निष्कर्षतः महिला लेखिकाओं की लड़ाई के संदर्भ में कहा जा सकता है कि नारी आदिकाल से ही पीड़ित एवं शोषित रही है। पुरुष प्रधान समाज ने मान–मर्यादा की आड़ में सदा उसे दबाकर रखना चाहा। कभी घर की इज्जत कहकर तो कभी देवी कहकर चार दीवारों के अंदर कैद ही रखा। इन्हीं परंपरागत पितृसत्तात्मक बेड़ियों को लांघने की लड़ाई है स्त्री विमर्श।

संदर्भ ग्रंथ

1) आजकलः मार्च 2013– पृष्ठ **20**
2) वहीं– पृष्ठ **29**
3) पमचशील शोध–समीक्षा –पृष्ठ **82**
4) आजकल : मार्च 2013 –पृष्ठ **27**
5) पंचशील शोध–समीक्षा – पृष्ठ **87**
6) आजकल : मार्च 2013 –पृष्ठ **24**
7) आजकल : मार्च 2011 –पृष्ठ **25**
8) पंचशील शोध–समीक्षा – पृष्ठ **61**